हक़ की दावत
और
ग़ैर-मुस्लिम

मतीन तारिक़ बाग़पती

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।'

हक़ की दावत और ग़ैर-मुस्लिम

हममें से ज़्यादातर लोग ऐसी आबादियों से सम्बन्ध रखते हैं जहाँ ग़ैर-मुस्लिम भाई भी रहते-बसते हैं। वे हमारे पड़ोसी हैं। सदियों से उनके साथ हमारे सम्बन्ध चले आ रहे हैं। कारोबार में, लेन-देन में, व्यापार में एक-दूसरे से वास्ता है। इसलिए हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम अपने भाइयों तक इस्लाम की दावत पहुँचाएँ।

लेकिन इससे पहले कि इस बारे में बातचीत हो, मैं गुज़ारिश करूँगा कि ज़रा आप अपने फ़र्ज़ और मंसब पर नज़र डालें ताकि इस सिलसिले में सोचने-समझने और काम करने में आसानी हो।

मुसलमानों का मंसब (पद)

अल्लाह का लाख-लाख शुक्र और एहसान है कि हम मुसलमान हैं। अल्लाह ने हमको अपने पैग़ाम का अमीन बनाया है, हमको बेहतरीन उम्मत क़रार दिया है और हमारा मंसब और हमारी ज़िम्मेदारी तय करते हुए फ़रमाया –

> "तुम बेहतरीन उम्मत हो, जो सारे इनसानों के लिए वुजूद में लाई गई हो, तुम भलाई का हुक्म देते हो और बुराई से रोकते हो और अल्लाह पर कामिल ईमान रखते हो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-110)

यानी तुम दुनिया में सबसे अच्छे गरोह हो और तुम्हारी ख़ूबी यह है कि तुम नेकियों और भलाइयों को फैलाने का काम करते हो और बुराइयों को मिटाते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।

नेकी फैलाना और बदी को मिटाना ख़ुद बहुत अहम काम है। इसके लिए किसी ख़ास जगह और हालात की शर्त नहीं है, बल्कि मोमिन मर्द जहाँ भी हो, और जिस वक़्त भी कर सकता हो यह काम करना चाहिए। नास्तिकता, नग्नता, झूठ, ख़ियानत, छल-कपट, सूदख़ोरी, रिश्वत, अत्याचार, सब शैतानी काम हैं जो मानव-समाज को घुन की तरह खा जाते हैं। ये बीमारियाँ जब समाज में फैलती हैं तो आदमी का अमन व सुकून ख़त्म हो जाता है। इसलिए एक दूसरी जगह अल्लाह ने मुसलमानों से ख़ास तौर पर फ़रमाया –

"ऐ मुसलमानो! तुममें एक ऐसी जमाअत होनी चाहिए जो लोगों को दुनिया और आख़िरत की भलाई की तरफ़ बुलाए और बुरे कामों से रोकती रहे और यही लोग हैं जो कामयाब और सफल होंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-104)

यानी आप लोगों की सफलता, आपकी कामयाबी और तरक़्क़ी का दारोमदार इस बात पर है कि आप लोगों को भलाई की तरफ़ बुलाते रहें। उनको ग़लत कामों से रोकने की कोशिश करें और ख़ुदा के बन्दों को ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाएँ। यही आपकी ज़िन्दगी का असल मक़सद है, यही उद्देश्य आपकी खास पहचान है। आपने यह काम न किया तो यह ख़ास पहचान बाक़ी न रहेगी। इसी की तरफ़ नबी (सल्ल०) की एक हदीस इशारा करती है–

"हर मुसलमान पर वाजिब है कि अगर वह किसी को ग़लत काम करते हुए देखे तो उसे उस काम से रोकने की कोशिश करे, और अगर ऐसा न करेगा तो वह हममें से नहीं है।"

यही नहीं बल्कि हो सकता है कि वह अल्लाह के अज़ाब में घिर जाए। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) कहते हैं कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यूँ फ़रमाते सुना है –

"लोग जब किसी गुनाह को होते देखें और उसकी रोकथाम

की कोशिश न करें तो अजब नहीं कि वे किसी सख़्त अज़ाब की लपेट में आ जाएँ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस हदीस में उन लोगों के लिए बड़ी इबरत और नसीहत है जो सूझ-बूझ से काम लेते हैं और ग़ौर व फ़िक्र करते हैं। आज जबकि चारों ओर बुराइयों और गुनाहों का बाज़ार गर्म है, नग्नता और बेहयाई का कारोबार बढ़ रहा है। जगह-जगह लेन-देन में, सम्बन्धों में, तिजारत में, राजनीति में मकर व फ़रेब, धोखा-धड़ी का चलन है। रिश्वत, सूद, शराब और नंगे नाचने की खुली छूट है। क़ौम-परस्ती और वतन-परस्ती की बन्दिशों से मानवता का दम घुट रहा है। ऐसे वक़्त में, ऐसे माहौल में आप लोगों का फ़र्ज़ है कि जिस जगह हों, जिन लोगों के बीच जीवन व्यतीत कर रहे हों वहीं अपनी बिसात भर उन हालतों को बदलने की पूरी-पूरी कोशिश करें। अल्लाह के बन्दों तक अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाएँ लेकिन यह याद रखें कि इसमें कुछ मुसलमान ही ख़ास नहीं हैं बल्कि हिन्दू, सिख, ईसाई, पारसी, बुद्ध और जैन वे जो कोई भी हों मानवता के नाते से आपके भाई हैं, आदम की औलाद हैं, उसी दुनिया-जहान के पालनहार के बन्दे हैं जिसकी अपार नेमतों से चरिन्दे, परिन्दे, इनसान, जानवर, हिन्दू और मुसलमान सब पल रहें हैं। इसलिए आपके लिए ज़रूरी है कि हर बन्दे के लिए अपने दिल में ख़ुलूस पैदा करें। यह अमल व इरादा न सिर्फ़ उसके लिए बल्कि आपके लिए भी कामयाबी का ज़ामिन है।

कहीं आग लग रही हो और आप आराम से बैठे रहें कि हमारा मकान तो सुरक्षित है यह तो कोई सही बात नहीं है। गर्म हवा का एक ही झोका कभी सारे घर को जलाकर राख कर देता है। इसी तरह आज की ख़राबियों पर अगर आप लोग यह सोचते हों कि हमें इनसे क्या मतलब है, हम तो ख़ुद नेक हैं, अच्छे हैं, ग़लत कामों से दूर हैं, दुनिया अगर झूठ बोलती है तो बोलती रहे। दूसरी क़ौमों के लोग अगर कम तौलते हैं तो तौलें, चोरी करते हैं तो करें, हमारे पड़ोसियों में बेपरदगी बढ़ती है तो बढ़े। तो यह कोई अच्छी बात नहीं है क्योंकि

बद-अमली का रोग बड़ा ख़राब है, यह रोग जब किसी देश, किसी क़ौम की बस्ती में रहनेवालों में लग जाता है तो उसको बाँझ कर देता है। आदमी पर ख़ुदग़र्ज़ी, नफ़्स-परस्ती और हवस व लालच का भूत सवार हो जाता है तो फिर वह जो कुछ भी करे कम है। इसी लिए तो नमरूद, फ़िरऔन, शद्दाद इसी प्रकार की शैतनत के नमूने थे जिनकी बदकिरदारी के कारनामों से इतिहास भरा पड़ा है।

इनसानों की इसी फ़ितरत को सामने रखते हुए अल्लाह ने हर ज़माने में अपने नबी भेजे। तमाम नबियों ने लोगों को ग़लत रास्तों पर चलने से रोका और अल्लाह की हिदायत की तरफ़ बुलाया। इस सिलसिले की आख़िरी कड़ी हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* थे। अब आप *(सल्ल०)* के बाद कोई नबी क़ियामत तक नहीं आएगा। दुनिया को अल्लाह की हिदायत की तरफ़ बुलाने की ज़िम्मेदारी आपके कंधों पर डाल दी गई है। अब आप ही को यह काम करना है और "भलाई का हुक्म और बुराई से रोकने" का फ़र्ज़ अंजाम देना है। आप ही से इस सिलसिले में क़ियामत के दिन पूछ-गछ होगी।

आख़िरत की पूछ-गछ और हमारा कर्तव्य

ज़रा सोचिए वह कैसा सख़्त दिन होगा जब सूरज की गर्मी से बुरा हाल होगा और अल्लाह की अदालत के एक कटघरे में आप और दूसरे कटघरे में दुनिया की दूसरी क़ौमें खड़ी होंगी और अल्लाह उनसे सवाल करेगा कि क्या तुम तक हमारी हिदायत पहुँची? तो वे कहेंगे कि ऐ अल्लाह! हम तक तेरी हिदायत नहीं पहुँची। वह तुर्रमबाज़ ख़ाँ जो सामने खड़े हैं इन्होंने आप का पैग़ाम हमें कभी नहीं सुनाया। इन शैख़ मसीता, घसीटा साहब का घर हमारे पड़ोस में था यह काम-काज के सिलसिले में हमसे हमेशा मिलते थे लेकिन इन्होंने कभी हमें नहीं बताया कि आपका दीन क्या है? ज़िन्दगी गुज़ारने का कौन-सा तरीक़ा आपने उतारा है। आपकी किताब भी उन्होंनें हमें कभी नहीं दिखाई तो फिर ऐ मुसलमानो! उस वक़्त इस बात का आपके पास क्या

जवाब होगा और वहाँ से कैसे पीछा छूटेगा।

क़ियामत पर आपका ईमान है, आख़िरत की पूछ-गछ भी ज़रूर होनी है और अल्लाह के दीन को क़ायम करना मुसलमानों की ज़िन्दगी का अव्वलीन फ़र्ज़ है। इन सब बातों को निगाह में रखना हम सबका फ़र्ज़ है कि हम सारे इनसानों तक अल्लाह का दीन पहुँचाएँ और विशेष रूप से अपने पड़ोसी ग़ैर-मुस्लिमों को अल्लाह के दीन की तरफ़ बुलाएँ और उनके रिश्ते का हक़ अदा करें। क़ुरआन में है—

> "लोगो! अपने रब से डरो जिसने तुमको एक ही जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनों से बहुत-से मर्द-औरत दुनिया में फैलाए। उस ख़ुदा से डरो, जिसका वास्ता देकर एक-दूसरे से अपना हक़ माँगते हो और रिश्ते व क़राबत के सम्बन्धों को बिगाड़ने से परहेज़ करो। यक़ीन जानो कि अल्लाह तुमपर निगरानी कर रहा है।" (क़ुरआन, सूरा-4, निसा, आयत-1)

इस आयत में हमें एक तरफ़ तो अल्लाह से डरने और उसकी नाराज़गी से बचने की ताकीद की गई है और दूसरी तरफ़ यह बात याद दिलाई गई है कि तमाम इनसान एक नस्ल से हैं और एक-दूसरे का ख़ून और गोश्त-पोस्त हैं। इसी वजह से उनके हमपर अधिकार हैं। हमें उनसे बाख़बर रहना चाहिए वरना हमारी पकड़ होगी।

ग़ैर-मुस्लिम भाई इनसानी नाते में आते हैं। हमें उनके मामले में अपनी सोच बदलनी चाहिए। हमें यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि अपने ग़ैर-मुस्लिम भाइयों से हमारा मेल-जोल और सम्बन्ध बहुत सीमित है और जो थोड़े-बहुत सम्बन्ध हैं तो उनमें उदारता और गहरे लगाव की कमी है। होना तो यह चाहिए कि हम उनको अपना भाई समझें, बिना किसी भेद-भाव, धर्म-जाति के उनकी ख़िदमत करें और उनसे बड़े पैमाने पर निस्स्वार्थ सम्बन्ध स्थापित करें जिनके पीछे भाईचारा, हमदर्दी, दिली लगाव और ख़ैरख़ाही की भावना हो।

नस्ल और वतनी सम्बन्ध

ग़ैर-मुस्लिम भाइयों से हमारा इनसानी नाता तो है ही, इसके अलावा वतनी सम्बन्ध भी है और फिर ज़्यादातर मुसलमानों का यहाँ के हिन्दू भाइयों से नस्ली रिश्ता भी है। इन सब बातों का तक़ाज़ा यह है कि हम उनकी भलाई के सिलसिले में सोचें, उनके क़रीब हों, शादी और दुख-सुख आदि मौक़ों पर शरीक हों। ख़ुशी के मौक़े पर हैसियत के अनुसार उपहार, तोहफ़े वग़ैरा पेश करें और ग़म के मौक़े पर उनके साथ हमदर्दी ज़ाहिर करें। अगर उनके यहाँ कोई मौत हो जाए तो उन्हें तसल्ली दिलाएँ, कोई बीमार हो तो उससे हमदर्दी की बातें करें और उनके कामों में हाथ बँटाएँ और अगर हो सके तो आर्थिक मदद करें। इस तरह यह भाव पैदा करें कि हमसे बढ़कर उनका कोई हमदर्द और भला चाहनेवाला नहीं। ख़िदमत, अच्छा सुलूक और ख़ैरख़ाही की भावना ऐसा प्रभाव रखती है कि बड़े से बड़ा दुश्मन भी इसके सामने विवश हो जाता है और पत्थर से पत्थर दिल भी मोम की तरह पिघल जाता है।

अरब की हालत और नबी *(सल्ल०)* का व्यवहार

अरब की हालत आप जानते ही हैं। वहाँ सौ फ़ीसदी अल्लाह के दीन से फिरे हुए लोग रहते थे। जिधर नज़र उठती थी, दुश्मन ही दुश्मन नबी *(सल्ल०)* की जान के पीछे पड़े रहते थे, लेकिन नबी *(सल्ल०)* यह समझते थे कि ये भटके हुए लोग हैं इसलिए अच्छे व्यवहार के हक़दार हैं। प्यार का बरताव ही उनको रास्ते पर ला सकता है। अतः आप *(सल्ल०)* को जो भी मौक़ा इनसानों की ख़िदमत का मिला, उसे हाथ से जाने नहीं दिया। यतीमों के सिर पर हाथ रखा, कमज़ोरों की ख़िदमत की, ग़रीबों की मदद की, मुसाफ़िरों को ठहराया, मेहमानों के साथ पूरी मेहमानदारी की, तमाम लोगों की भलाई और फ़ायदे के कामों में हिस्सा लिया। नैतिक बुराइयों को, जैसे चोरी-डकैती, धोखा-धड़ी, जुआ, शराब पीना, बदकारी वग़ैरा को मिटाने

की कोशिश की और इस तरह अपने अमल, -अपने चरित्र, अपने नैतिक व्यवहार, अपनी ख़िदमत, अपनी मुहब्बत से लोगों के दिलों को जीता ही नहीं बल्कि उनकी कायापलट कर दी। यानी वही लोग जो अब तक विरोध कर रहे थे, वह ख़ुद दीन के सिपाही बन गए। वे जो कल तक चोर-डाकू और क़ातिल थे, आज बहुत ही नेक और ख़ुदा से डरनेवाले हो गए।

यदि ग़ौर से देखें तो आज भी दुनिया में वही ख़राबियाँ हैं। वही ऊँच-नीच है, जो उस वक़्त थी। अब भी समाज में वही गंदगी और बुराइयाँ हैं, जो उस ज़माने मे थीं। लेकिन शैतान ने उनके ग़लत कामों को उनकी नज़र में बहुत ही ख़ूबसूरत बना दिया है और वे इस धोखे में हैं कि हम बहुत अच्छे काम कर रहे हैं।

> "शैतान ने उनके कर्मों को उनके लिए ख़ुशनुमा बना दिया और उन्हें सीधे रास्ते से फेर दिया हालाँकि वे सूझ-बूझ रखते थे।" (क़ुरआन, सूरा-29, अनकबूत, आयत-38)

अब आपका काम यह है कि ऐसे लोगों में नैतिक सोच पैदा करें। उन्हें यह बताएँ कि इस वक़्त जो एक आम बेचैनी पैदा हो गई है, उसकी अस्ल वजह बुनियादी नैतिकता को छोड़ देना ही है। दयाभाव, न्याय, सच्चाई, वादों को पूरा करना, सेवा, वैध और अवैध का अन्तर ये सब ऐसे अमल हैं कि जब भी लोग इनकी अनदेखी करेंगे, उसी वक़्त ज़िन्दगी का आराम व सुकून ख़त्म हो जाएगा और पूरे समाज में बुराइयाँ ही बुराइयाँ उबल पड़ेंगी। यह बात ग़ैर-मुस्लिम भाई स्वीकार करते हैं। हमें इस नैतिक सोच को ज़रा उभार देना है और बता देना है कि हक़ीक़त मे नैतिक बिगाड़ के कारण ही आज चारों ओर बेचैनी का वातावरण है।

ग़ैर-मुस्लिम समाज और विचारों का विश्लेषण

इसी के साथ-साथ मेरा यह मशवरा है कि दीन की दावत का काम करने से पहले आप ग़ैर-मुस्लिम समाज़ और उसके विचारों का

जाइज़ा ले लें। यह देश हमेशा से धार्मिक रहा है, यहाँ के लोगों में ईश्वर और परलोक दोनों की परिकल्पना किसी न किसी रूप में पाई जाती है, लेकिन वर्षों की ग़लत शिक्षा-दीक्षा की वजह से उनपर ज़ंग लग गया है और उनकी ताबीर भी ग़लत हो गई है। इस्लाम का एक नुमाइंदा होने की हैसियत से आपको उनकी आस्थाओं, धार्मिक विचारों, सामाजिक रीति-रिवाजों का गहन अध्ययन करना चाहिए। उनके पूर्वजों और धार्मिक ऋषियों, मुनियों के अच्छे-भले कामों को याद रखो बल्कि हो सके तो लिख लो ताकि बात-चीत एक खुले माहौल में हो सके। जैसे कि रामचन्द्र जी का जीवन-चरित्र, गीता की शिक्षाएँ और गौतम बुद्ध के उपदेश, जिनमें बहुत-से भाग अमल करने लायक़ हैं मौक़े-मौक़े पर अपने हिन्दू भाइयों को उनकी शिक्षाएँ याद दिलानी चाहिएँ जो एक लम्बे समय से भूले हुए हैं। उनसे कहना होगा कि उनके पूर्वजों के जीवन और शिक्षाओं में बहुत कुछ समाज-सुधार के पहलू हैं।

राजनीतिक ग़लतफ़हमियों को दूर करना

केवल धार्मिक हैसियत से ही उनको समझाना काफ़ी नहीं होगा बल्कि राजनीतिक रूप से भी सन्तुष्ट करना होगा। अतीत में मुसलमानों और हिन्दू भाइयों के बीच ऐसे सम्बन्ध रहे हैं जिनके बुरे प्रभाव आज तक बाक़ी हैं। इसलिए उन घटनाओं से पैदा हुए अवरोधों को दूर करके ग़ैर-मुस्लिमों के दिलों और दिमाग़ों को साफ़ करना दीन की दावत देने के सिलसिले में पहला काम है।

राजनीतिक हैसियत से हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के विरोधी बने रहें, यह सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यावहारिक किसी प्रकार से भी मुनासिब नहीं है।

आज़ादी से पहले बाहर से आई हुई एक क़ौम देश में राज करती थी और हिन्दू-मुसलमान दोनों उसके ग़ुलाम थे। "लड़ाओ और राज करो" के नियम को काम में लाते हुए उन्होंने उस ज़माने के इतिहास

को बदलकर हिन्दू भाइयों के सामने पेश किया और हिन्दुओं के बड़े-बड़े वीरों को मुसलमान हुकूमतों का बाग़ी क़रार दिया और अपनी इसी नीति से वे चाहते थे कि हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में एक-दूसरे के लिए नफ़रत बैठ जाए, वे आपस में लड़ते रहें और हम उनपर आराम और सुकून से राज करते रहें।

लेकिन अब अंग्रेज़ यहाँ से जा चुके हैं। अपने देश में हमें और हमारे भाइयों को रहना है, अतः पिछली ग़लतफ़हमियाँ मिटनी चाहिएँ। हमारे सामने हमारे पूर्वजों की इनसाफ़, उदारता और प्रेम की घटनाएँ आनी चाहिएँ, ताकि मौजूदा माहौल को बदला जा सके।

काम का तरीक़ा

इसका मतलब यह नहीं है कि आप उनसे बहस करने लगें या कोई मसला लेकर एक-दूसरे के सामने बहस का दरवाज़ा खोल लें। बहस का तरीक़ा नफ़रत और ग़ुस्सा पैदा करनेवाला है और अतीत में ऐसा होता रहा है। इससे दीन को फैलाने के काम को बहुत नुक़सान पहुँचा है उससे अब हर जगह, हर क़ीमत पर परहेज़ करना चाहिए।

आप दीन-इस्लाम के अमीन हैं, आपका काम दूसरों तक अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाना, एक महान उद्देश्य की तरफ़ लोगों को बुलाना है, न कि झगड़ा पैदा करना और नफ़रत दिलाना। आदमी इस बात को आसानी के साथ क़बूल करने को तैयार होता है जिसके पीछे मुहब्बत, उदारता और ख़ैरख़ाही की भावना काम करती हो। बातचीत अच्छे ढंग से की जाए और लान-तान से बचा जाए तो कट्टर से कट्टर आदमी को अपना सहमत और सहयोगी बनाया जा सकता है।

वाद-विवाद से परहेज़

आप सब जानते हैं कि नबी *(सल्ल०)* अल्लाह का दीन फैलाने के लिए जब ताइफ़ गए तो वहाँ के रईसों ने आप *(सल्ल०)* के पीछे गुण्डों और बदमाश लड़कों को लगा दिया था और नबी *(सल्ल०)* को बहुत तकलीफ़ें पहुँचाई थीं। उन्हीं लोगों में अब्द-यालैल नाम का एक

आदमी था, जो बहुत ही निर्दयी, अत्याचारी और बुरे स्वभाव का था। हिजरत के बाद वह अपने साथ एक दल लेकर मदीना आया और मुसलमान होने से पहले नबी *(सल्ल०)* के सामने अपनी कुछ शर्तें रखीं। वे शर्तें आप सुनेंगे तो हँस पड़ेंगे, लेकिन नबी *(सल्ल०)* ने उससे बहस नहीं की बल्कि नरमी से समझाया। उसका कहना था कि "लात" को तोड़कर गिराया न जाए। इसी तरह वह और उसके साथी चाहते थे कि हमें नमाज़ से अलग रखा जाए। फिर कहने लगे कि हमारे लिए सूद (ब्याज) की छूट दी जाए और शराब, ज़िना और व्यभिचार की अनुमति भी दी जाए। नबी *(सल्ल०)* के अलावा कोई और होता तो शायद उनके और इस्लाम के बीच में गहरी खाई पड़ जाती लेकिन हक़ की ओर बुलानेवाले नबी *(सल्ल०)* को मालूम था कि इन चीज़ों से उन लोगों का सदियों से सम्बन्ध है, धीरे-धीरे ही छूटेगा। जिस रास्ते पर वर्षों से चल रहे थे उनपर से वापस लौटना आसान न था, जो रीति-रिवाज उनकी तबीयत में बैठ चुके थे, उनको छोड़ने के लिए उनके दृष्टिकोण को समझना ज़रूरी था। चुनाँचे आप *(सल्ल०)* ने उनको बोलने का पूरा-पूरा मौक़ा दिया और वाद-विवाद का तरीक़ा नहीं अपनाया, जब उनके दिल का ग़ुबार निकल गया तो नबी *(सल्ल०)* ने उनके सामने इस्लाम की दावत पेश की जिसे उनको क़बूल करते ही बनी।

आपके सामने किसी को नीचा दिखाने का सवाल नहीं है। न मुनाज़रे के अखाड़े में किसी के हार मान लेने से आपका काम चलता है। बल्कि नेकी फैलाने और अल्लाह के बन्दों को अल्लाह के ग़ज़ब से बचाने का मामला है। इसके लिए बहुत ही विनम्रता, सच्चाई, ख़ालिस नीयत और अखलाक़ की ज़रूरत है। भड़काऊ बातें, कट-हुज्जती और वाद-विवाद कोई अच्छी चीज़ नहीं है। जिससे आप बात कर रहे हैं, अगर वह कोई टेढ़ा बरताव अपनाए तो हक़ की दावत देनेवाले को नर्म और ठण्डे स्वभाव से काम लेना चाहिए, क्योंकि

मानवता के सबसे बड़े हकीम हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* ने फ़रमाया है कि–

"ख़ुशख़बरी दो और नफ़रत न पैदा करो।" (हदीस)

बातचीत में मिठास, निरन्तर अच्छा व्यवहार और ख़ुलूस का प्रभाव होना लाज़मी है। आप जिससे बात कर रहे होते हैं, एक न एक दिन वह सोच-विचार करने पर ज़रूर मजबूर होगा। यही आपकी सफलता का सुबूत है। जो फल पक गया हो वह ज़रूर किसी न किसी दिन आपकी झोली में गिरेगा। यह उन जादू रूपी शब्दों का प्रभाव होगा जो आपने अपने सम्बन्धों के बीच प्रयोग किए थे और मुख़ातब के दिल से हठधर्मी और विरोध का निकल जाना आपकी नरमी और हमदर्दी के अमल का नतीजा है। यह एक ऐसी हक़ीक़त है कि जिसके लिए अल्लाह तआला ने अपने नबी हज़रत मूसा *(अलैहि०)* को फ़िरऔन जैसे कठोर और अत्याचारी बादशाह के पास भेजते हुए हिदायत की थी –

"जाओ तुम दोनों (यानी मूसा और हारून) फ़िरऔन के पास, वह सरकश हो गया है। उससे नर्म बात करना, ताकि वह याददिहानी हासिल करे या डरे।"

(क़ुरआन, सूरा-20, ता-हा, आयत-43,44)

क़ौमी और गरोही दावत से बचना

अस्ल में वाद-विवाद का मसला उस वक़्त पैदा होता है, जब आदमी अपने-आपको एक फ़रीक़ समझता है। आजकल क़ौमी और गरोही भेद-भाव का एहसास बहुत तेज़ है। उसने एक वबाई सूरत इख़्तियार कर ली है, जिसकी वजह से क़ौमों-क़ौमों और मुल्कों-मुल्कों में रस्सा-कशी है। हसद, घमण्ड, कीना, जलन और दुश्मनी की आग हर तरफ़ फैल रही है। मुसलमान भी एक मुद्दत से उसकी लपेट में है। लेकिन हक़ की दावत देनेवाले के लिए यह कैफ़ियत ठीक नहीं है, उसको गरोही भेद-भाव से ऊपर उठकर और इस्लाम का नुमाइन्दा

बनकर दुनिया के सामने आना चाहिए। उसका दामन क़ौमी-दासता के हर धब्बे से पाक होना चाहिए। उसके दिल में तास्सुब का एक अंश भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि अल्लाह के नबी *(सल्ल०)* का फ़रमान है –

"तमाम मख़्लूक़ ख़ुदा का कुन्बा है।" (हदीस)

इस लिहाज़ से दुनिया का हर आदमी चाहे वह यूरोप का रहने वाला हो या पूर्व-पश्चिम कहीं का, छोटा हो या बड़ा, काला हो या गोरा, सब आपकी दया के पात्र हैं, चुनाँचे सूरा निसा में विशेष रूप से फ़रमाया–

> और तुम सब अल्लाह की बन्दगी करो और उसके साथ किसी को साझी न बनाओ और अच्छा व्यवहार करो, माँ-बाप के साथ, नातेदारों, अनाथों और मुहताजों के साथ, नातेदार पड़ोसियों के साथ और अपरिचित पड़ोसियों के साथ, और साथ रहनेवाले आदमी के साथ और मुसाफ़िर के साथ और उनके साथ भी जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4, निसा, आयत-36)

यहाँ पर अपरिचित पड़ोसियों से मुराद वे पड़ोसी हैं, जिनसे रिश्तेदारी और क़ौमी कोई सम्बन्ध न हो। इसमें ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसी भी शामिल हैं। मुसीबत के मारों की मदद, भटके हुए लोगों को रास्ता दिखाने, किसी ज़ख़्मी दिल पर प्यार का मरहम रखने में मुस्लिम, ग़ैर-मुस्लिम का कोई भेद नहीं है। मौजूदा राजनीतिक खींच-तान, आर्थिक बदहाली और आपसी झगड़ों से हमारी तरह हमारे ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसी भी परेशान हैं। आप मुसीबत के समय में दो शब्द प्यार के कहते हैं और ज़ात-पात से ऊपर उठकर उनको गले लगाते हैं, उनके दुख-दर्द में शरीक होते हैं तो उनके दिल में आपके लिए जगह पैदा हो जाएगी, फिर आप अपनी बात उनसे मनवा सकते हैं।

इस मौक़े पर उन्हें बताना चाहिए कि आज लोगों के बिगाड़ की

अस्ल वजह यह है कि इनसान अपने पैदा करने वाले ईश्वर को भूल गया है, मज़हब को भूल गया है, जबकि धर्म का जीवन से सीधा सम्बन्ध है और धर्म ही वह शक्ति है, जो इनसान को इनसान बनाती है, नहीं तो आदमी जानवर से भी बदतर है। अब अगर हमें इस सतह से ऊपर उठना है तो धार्मिक शिक्षाओं को जीवन का अंग बनाना चाहिए। ख़ासतौर से इस्लाम ऐसी शिक्षा प्रदान करता है जो बुराइयों को मिटाती है और जिसमें नेकियाँ खुद परवान चढ़ती हैं। साथ ही साथ यह भी बताना चाहिए कि इस्लामी शिक्षाओं पर किसी का स्वामित्व नहीं है, जिस तरह रौशनी और हवा का निज़ाम अल्लाह की तरफ़ से सब इनसानों के लिए किया गया है, उसी तरह इस्लामी जीवन-व्यवस्था भी सबके लिए है, यह व्यवस्था और इसकी शिक्षाएँ मानवता की सफलता की ज़मानत देनेवाली हैं।

यह व्यवस्था किसी धर्म, शक्ति, गरोह और जाति की विरोधी नहीं है। यह ग़लत और अवास्तविक दृष्टिकोण की विरोधी है और अपने अनुयायियों से कहती है कि सच्चरित्रता, नैतिकता, इनसाफ़, सच्चाई, उदारता और हक़-परस्ती को अपने जीवन का व्यावहारिक ढंग बनाओ और दुनिया के दूसरे लोगों को भी इस तरफ़ बुलाओ। यह फ़र्ज़ हर मुसलमान पर लागू होता है कि वह जहाँ कहीं भी हो बुराई को मिटाने और भलाई को फैलाने की कोशिश करे। भलाई फैलाने और नेकी, सच्चाई, इनसाफ़, ईमानदारी के काम करने से मुस्लिम, ग़ैर-मुस्लिम सभी को लाभ मिलेगा।

दावत में हिक्मत का पहलू

दूसरी चीज़ जिसकी तरफ़ मैं आपकी तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ वह मिली-जुली आबादी में इस्लामी दावत के काम के सिलसिले में हिक्मत की रूह को अपनाना है। याद रखिए, हर आदमी हर वक़्त हर बात सुनने के लिए तैयार नहीं होता। इसके लिए मुनासिब मौक़े और

ज़गह का इन्तिज़ार करना होता है। ठीक समय पर कही गई एक बात बड़े-बड़े उपदेशों और भाषणों से ज़्यादा असर रखती है।

हक़ की दावत के रास्ते में कभी सख़्त मुख़ालिफ़तें पहाड़ बनकर रास्ता रोकती हैं, कभी लोग अपनी डगर से हटने को आमादा नहीं होते। कभी हक़ की आवाज़ को सुनकर अनसुनी कर देते हैं, ऐसे मौक़े पर हिक्मत से काम निकालना होता है। आपके सामने भी ऐसे अवसर आएँगे। आपको भी इन बातों से वास्ता पड़ेगा। आप भी मुख़ालिफ़ राय रखनेवाले लोगों से मिलेंगे। उस वक़्त बड़ी हिक्मत की ज़रूरत होगी आपकी रहनुमाई के लिए यहाँ पर हुदैबिया की सुलह की घटना बयान की जा रही है।

नबी *(सल्ल०)* ने क़ुरैश के सरदार सुहैल-बिन-अम्र से उस मौक़े पर बज़ाहिर बहुत दबकर मुआहिदा किया था। जब हज़रत अली *(रज़ि०)* मुआहिदे की शर्तें लिखने बैठे तो नबी *(सल्ल०)* ने उनको 'बिसमिल्लाह' लिखने का हुक्म दिया, लेकिन सुहैल ने कहा, हम नहीं जानते कि यह 'रहमान-रहीम' कौन है। हमारे चलन के अनुसार 'बिसमि-क अल्लाहुम-म' लिखा जाए। प्यारे नबी *(सल्ल०)* ने उसकी यह बात मान ली और फ़रमाया, लिखो निम्न मुआहिदा मुहम्मद अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* और सुहैल-बिन-अम्र के बीच तय पाया। सुहैल-बिन- अम्र ने फ़ौरन कहा कि अगर मैं यह जानता कि आप अल्लाह के रसूल हैं तो आपसे लड़ता ही क्यों? अपना और अपने वालिद का नाम लिखवाइए। हज़रत अली *(रज़ि०)* 'मुहम्मद रसूलुल्लाह' के शब्द लिख चुके थे और अदब के लिहाज़ से इन शब्दों को अपने हाथ से मिटाना नहीं चाहते थे। नबी *(सल्ल०)* ने तहरीर लेकर ये शब्द ख़ुद मिटा दिए और उनकी जगह मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह लिखवाया।

सुहैल-बिन-अम्र की ज़्यादतियाँ देखकर सहाबा *(रज़ि०)* बहुत परेशान हो रहे थे, मगर नबी *(सल्ल०)* के सामने हिक्मत का बड़ा

पहलू था। इतिहास पर नज़र रखनेवाले लोग जानते हैं कि इस हिक्मते-अमली (रणनीति) के नतीजे एक ही साल में कितने शानदार निकले। मक्का की पथरीली ज़मीन भी फ़तह हो गई, जहाँ शत-प्रतिशत मुख़ालिफ़ लोग थे, वहाँ ऐसा इंक़िलाब उठा कि वही सुहैल-बिन-अम्र जिसकी गर्दन हुदैबिया में अकड़ी हुई थी और जो सीधे मुँह बात न करता था, आख़िरकार नबी *(सल्ल०)* के पैरों पर आ गिरा। ख़ालिद-बिन-वलीद *(रज़ि०)* और अम्र-बिन-आस *(रज़ि०)* जो अब तक दुश्मनी में आगे-आगे थे, इस सुगम मेल-मिलाप और हिक्मत भरी नीति से नबी *(सल्ल०)* के अंगरक्षक बन गए।

इसके पसमंज़र पर अगर आप ग़ौर करें तो मालूम होगा कि नबी *(सल्ल०)* के सामने एक उद्देश्य था। उस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए लगन थी और इनसानों को दोज़ख़ की आग से बचाने की आरज़ू थी। उस वक़्त भी बहुत-से वक़्ती मसले मौजूद थे, लेकिन आपने उनको अपना उद्देश्य नहीं बनाया। हंगामी मामलों में समय बरबाद नहीं किया बल्कि तौहीद और आख़िरत की कल्पना पेश की। बुराई के मिटाने पर ज़ोर दिया। बाद में वे मसाइल भी हल हो गए जिनसे पूरा समाज परेशान था। आज के दौर में भी इसी तरीक़े में रौशनी है। यह ठीक है कि अनेक मसले सिर उठा रहे हैं, यह भी ठीक है कि मुख़ातब की बात सुनकर तबीयत परेशान होती है, मगर यह भी हक़ीक़त है कि वक़्ती मसले उद्देश्य की जगह नहीं ले सकते। हमको तो इस बात पर ग़ौर करना चाहिए कि करोड़ों इनसान दोज़ख़ का ईंधन बननेवाले हैं। उनको इस मार्ग से हटाकर अकेले एक अल्लाह जिसका कोई साझीदार नहीं, का मार्ग दिखाना मुसलमानों का जीवन-उद्देश्य है। इस रास्ते में अगर कोई परेशानी उठानी पड़े, मुख़ातब से कड़वी बातें सुननी पड़ें या और कोई मन के प्रतिकूल बात हो जाए तो अपने महान उद्देश्य के लिए किसी बात का बुरा न मानें।

बात यह है कि हर क़ौम के लोग अपनी आस्थाओं और

रीति-रिवाजों के साथ कुछ न कुछ लगाव रखते हैं। आपके मुँह से अगर उनके ख़िलाफ़ भूल से भी कोई बात निकल गई तो मुख़ातब की भी जाहिलाना ग़ैरत भड़क उठेगी और हो सकता है कि वह अपना आपा खोकर आपको कुछ कह-सुन दे और फिर आप भी हक़परस्ती के जोश में कोई ग़लत क़दम उठाएँ। यह तरीक़ा हिक्मत के बिल्कुल ख़िलाफ़ है, इसी लिए अल्लाह ने क़ुरआन मजीद में हक़ की दावत देनेवालों को इस चीज़ से बचने की ताकीद फ़रमाई है—

> "और तुम बुरा न कहो उनको, जिनको ये अल्लाह के सिवा पूजते हैं कि वे हद से गुज़रकर बेजाने-बूझे अल्लाह को बुरा कह बैठें, इसी तरह हमने हर उम्मत के लिए उनके कामों को सुहावना बना दिया है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-6, अनआम, आयत-108)

यह हिक्मत का तक़ाज़ा भी है। मुझे बहुत-सी ऐसी घटनाएँ मालूम हैं, जिसमें एक बड़े मक़सद यानी दीन की दावत के लिए पूर्वजों ने हिक्मत से काम लिया और इसका मनचाहा फ़ायदा हुआ।

हज़रत अली *(रज़ि०)* का मशहूर वाक़िआ है कि आपने जंग के दौरान एक दुश्मन को पछाड़ा और उसका गला काटना ही चाहते थे कि उसने आपके चेहरे पर थूक दिया। वे तुरन्त उसके सीने से उतर आए और तलवार म्यान में रख ली और अपने ग़ुस्से की हालत में उसको क़त्ल नहीं किया। उनके इस अमल का नतीजा यह हुआ कि वह दुश्मन मुसलमान हो गया। यदि आप ग़ुस्से से काम लेकर उसे क़त्ल कर देते तो यह नतीजा हासिल न होता जो हिक्मत के तरीक़े से हुआ।

मौलाना मुहम्मद अली *(रह०)* के यहाँ एक मेहतर आया करता था। मौलाना उससे हमेशा प्यार का बरताव किया करते थे। एक दिन इत्तिफ़ाक़ से वह खाने के वक़्त आ गया। मौलाना ने देखा तो उनके दिल को गवारा न हुआ कि उसके बिना खाना खा लें। अतः उन्होंने उससे फ़रमाया, मेहरचन्द भाई खाने का वक़्त है, हाथ धो लो और मेरे

साथ खाओ। वह पहले तो झिझका लेकिन मौलाना के बहुत ज़िद करने पर तैयार हो गया। मौलाना ने ख़ुद उसके हाथ धुलाए और पकड़कर अपने पास बिठा लिया और फ़रमाया इस्लाम में ऊँच-नीच नहीं है, मानवता के नाते तुम भी हमारे भाई हो। इस बात से वह इतना प्रभावित हुआ कि कलिमा-ए-तौहीद पढ़कर मुसलमान हो गया।

एक और क़िस्सा हज़रत शाह वलीउल्लाह *(रह०)* का है। शाह साहब दिल्ली जाने के लिए घर से बैलगाड़ी में सवार हुए, बैलगाड़ी चलानेवाला हिन्दू था। शाह साहब अल्लाहवाले आदमी थे, नमाज़ के वक़्त नमाज़ पढ़ते और दूसरे वक़्त अल्लाह के ज़िक्र में लगे रहते। इसके अलावा जो भी समय मिलता उसमें गाड़ीवाले को इस्लाम की अच्छी, सच्ची बातें बताते और खाना भी अपने ही साथ खिलाते-पिलाते। रास्ते भर उसका पूरा ख़याल रखा। गाड़ीवाला उनके इस सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। दिल्ली पहुँचकर जब शाह वलीउल्लाह *(रह०)* ने उससे कहा कि जाओ, तो उसने निवेदन किया कि हज़रत मुझे अपनी सेवा ही में रख लीजिए। मैं अब गुमराही में वापस नहीं जाऊँगा। अतः शाह साहब के हाथ पर वह मुसलमान हो गया।

इस तरह के बहुत-से क़िस्से हैं, जो हमारे पूर्वज़ों को पेश आ चुके हैं। उनके ज़रिए ख़ुदा के सैकड़ों बन्दों का जीवन सँवर गया। आज भी ख़ुलूस, हिक्मत और प्यार से काम लिया जाए तो बहुत-सी रूहें (आत्माएँ) जो अंधकार में पड़ी हैं, रौशनी में आ सकती हैं। हमारा देश बहुत बड़ा है, इसके अधिकांश भागों में अछूत हरिजन और दूसरी बहुत-सी दलित क़ौमें बसी हुई हैं। आज वे ऊपर उठना चाहती हैं, लेकिन हिन्दू समाज के बंधनों के कारण अभी तक उनको वह स्थान नहीं मिल सका है, जिसके वे हक़दार हैं। आप अगर अपने अन्दर ज़रा भी उदारता और लचक पैदा कर लें और उन तक क़ुरआन की दावत लेकर जाएँ तो बहुत अच्छे नतीजे हासिल हो सकते हैं।

बस्ती का जाइज़ा

इस काम के लिए आपको अपनी बस्ती का नक़्शा तैयार करना होगा। जिसमें इस बात का पता चले कि वहाँ कितने लोग, किस विचारधारा के तथा किस धर्म के माननेवाले हैं? कितने लोग पढ़े-लिखे हैं और विभिन्न लोगों के कारोबार क्या-क्या हैं? वे क्या-क्या दिलचस्पियाँ रखते हैं? उनके समाज और बिरादरी में कौन-कौन से त्यौहार मनाए जाते हैं? रीति-रिवाजों को मानने का क्या हाल है और यह भी कि उनका कितना और कौन-सा वक़्त खाली गुज़रता है? इस जाइज़े को सामने रखकर दावत के काम में बड़ी मदद मिलेगी।

यानी यह बाहरी तैयारी थी। अब दावत देनेवाले को चाहिए कि जिस मुहल्ले में वह रहता है, जिस तबक़े के लोगों के क़रीब है, उन लोगों से मेल-जोल बढ़ाए। परस्पर सम्बन्धों को और फैलाए। उनके शादी-ब्याह और रंज व ग़म के मौक़ों पर अपनी निस्स्वार्थ सेवाएँ प्रदान करे और उनको अपने यहाँ भी उत्सवों में बुलाए और इस प्रकार मिलने-जुलने का अवसर निकाले यह दिली दोस्ती बढ़ाने का बेहतरीन नुस्ख़ा है।

समाज-सुधार के कामों में शिरकत

आजकल हर बस्ती में समाज-सुधार का काम हो रहा है। समाज की सेवा का भाव उभर रहा है। बीज गोदाम, पंचायती व्यवस्था, ग्राम-सुधार, बस्ती की सफ़ाई-सुथराई और क़ौमी एकता की समितियाँ चल रही हैं। ऐसे मौक़ों पर नज़र रखनी चाहिए, उनमें हिस्सा लेना चाहिए और अच्छा अवसर मिलते ही अपना दृष्टिकोण समझाना चाहिए। इस बारे में आपको याद दिला दूँ कि नबी *(सल्ल०)* ने देखा कि अरब के लोगों को अमन-सुकून हासिल नहीं है। रास्ते ख़तरनाक हैं, मुसाफ़िर लुट जाते हैं और ग़रीबों पर हर तरह का अत्याचार हो रहा है, तो आप *(सल्ल०)* ने मक्का के लोगों के साथ मिलकर उन बुराइयों को दूर करने के लिए एक समिति बनाई जिसका मनचाहा प्रभाव हुआ।

इसी तरह आपको भी लोगों की ख़िदमत करने व अपनी बस्ती में समाज-सुधार के काम करने के बहुत-से अवसर मिल सकते हैं। ऐसे अवसरों पर अगर आप प्यार, उदारता और दोस्ती को अपनाते हैं, बिना भेद-भाव हिन्दू-मुस्लिम मरीज़ों की तीमारदारी करते हैं, भूखों को खाना खिलाते हैं, अंधो को रास्ता दिखाते हैं, नंगों को कपड़ा पहनाते हैं, तो हर आदमी का दिल आपकी बातें सुनने के लिए खुल जाएगा।

सामूहिक कामों की निशानदही

इस मौक़े पर उनके धार्मिक रिति-रिवाजों को भी हमदर्दी और उदारता के साथ सुना जाए। उनमें आपको बहुत-सी बातें ऐसी मिलेंगी जो इस्लामी-शिक्षाओं ही की बिगड़ी हुई सूरत मालूम होंगी। उनको बताया जाए कि ये चीज़ें इस्लाम में इस शक्ल में मौजूद हैं और ये बातें हमारे और तुम्हारे बीच समान हैं। बुनियादी शिक्षाओं में आपस में कोई भेद नहीं है। सामूहिक मामलों पर जनमत को सहमत बनाने की तरफ़ क़ुरआन मजीद में भी हिदायत फ़रमाई गई है।

> "(ऐ नबी)कहो! ऐ किताबवालो! आओ एक ऐसी बात की ओर जिसे हमारे और तुम्हारे बीच समान मान्यता प्राप्त है कि हम अल्लाह के अलावा किसी की बन्दगी न करें और न उसके साथ किसी चीज़ को साझी ठहराएँ और न आपस में हममें से कोई एक-दूसरे को रब बनाए। फिर यदि वे मुँह मोड़ें तो कह दो, गवाह रहो, हम तो मुस्लिम आज्ञाकारी हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-64)

अल्लाह को एक मानना, अल्लाह को एक जानना और उसको पैदा करनेवाला, स्वामी, मालिक, उपासक और हाकिम समझना ऐसी बात है जिसको ग़ैर-मुस्लिम भाई भी किसी न किसी सूरत से स्वीकार करते या कर सकते हैं। इसी लिए अल्लाह ने इस समान मान्यता की तरफ़ दावत देने के लिए कहा है। हम इस बारे में ज़बानी बातचीत भी कर सकते हैं तथा अख़बारों, पम्फ़लेटों, छोटी-छोटी किताबों से भी

मदद ले सकते हैं, जो दावती उद्देश्यों को सामने रखकर लिखी गई हों।

इनके अलावा विभिन्न वक़्तों में ऐसे सामूहिक समारोहों और सभाओं का आयोजन करके लोगों को बुलाया जा सकता है। मिसाल के तौर पर मुशायरे, साहित्यिक-संगोष्ठियाँ, ज्ञानात्मक वाद-विवाद और धार्मिक सभाएँ इस काम में सहायक हो सकती हैं। कभी-कभी ऐसे विषयों, मसलों पर भी जिनसे आज पूरा देश दोचार है जैसे भुखमरी, अत्याचार, जहालत, सूद, रिश्वत, ऊँच-नीच, असहयोगिता, ईश-अज्ञानता और नैतिक कमज़ोरियों पर सिम्पोज़ियम रखिए, जिससे आम लोगों के सामने इस्लाम की सुधारवादी विचारधारा आ सके।

हो सकता है कि पुराने कुछ बुज़ुर्गों को इस तरह के काम नागवार लगें। क्योंकि वर्षों से दीन की सीमित रूप-रेखा लोगों के दिलों में रची-बसी है। इसलिए वे सोचेंगे कि कहाँ सिम्पोज़ियम और कहाँ तब्लीग़े-दीन, मगर याद रखिए इस प्रकार की सभाओं से हमारा मक़सद (ईश्वर न करे) मनोरंजन नहीं है बल्कि उनके ज़रिए से लोगों को अपनी दावत की तरफ़ आकर्षित करना है। उनके दिलों में इस्लाम का पैग़ाम उतारना है। इस तरह अगर अल्लाह की तौफ़ीक़ से एक आदमी भी आपकी बात मान लेता है या अपने आचार-विचार परिवर्तित करने के लिए तैयार हो जाता है, तो समझो कि उसकी और आपकी दोनों की दुनिया और आख़िरत सुधर गई। नबी *(सल्ल०)* ने हज़रत अली *(रज़ि०)* से एक मौक़े पर फ़रमाया था कि—

> "अगर तुम्हारे ज़रिए से एक आदमी भी सीधी राह पर आ
> जाता है तो यह सौ सुर्ख़ (लाल) ऊँटों से बेहतर है।"(हदीस)

एक आदमी जो अंधेरे में जीवन व्यतीत कर रहा है तथा कुफ़्र और शिर्क के दलदल में फँसा हुआ ग़लत काम करते हुए जिसकी उम्र बीत गई हो, जिसे हलाल-हराम, पाकी-नापाकी की कोई तमीज़ न हो आप उसके दिल के अंधेरों में हक़ का चिराग़ रौशन करते हैं, उसकी

भटकी हुई रूह को उसके पैदा करनेवाले के दरवाज़े तक लाते हैं, यह कितना महान काम है। एक हदीस में यही बात इस तरह फ़रमाई गई है-

"अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* फ़रमाते हैं कि जो आदमी हिदायत की दावत देगा, उसे तमाम लोगों के बराबर अज्र (सवाब) मिलेगा, जो उसकी दावत को मान लेंगे और इससे उन लोगों के अज्र में कोई कमी न होगी। और जो आदमी गुमराही की तरफ़ दावत देगा इससे उन तमाम लोगों के गुनाहों के बराबर गुनाह होगा जो उसकी दावत की पैरवी करेंगे और इससे उन लोगों के गुनाहों में कोई कमी न होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

यह बात सभी जानते हैं कि दुनिया में हर आदमी या तो गुमराही की तरफ़ दावत देता है या फिर हिदायत और अल्लाह के दीन की तरफ़। जो लोग इनसानों के मनगढ़ंत निज़ामों, क़ानूनों, शासन-संविधानों, बाप-दादा के रीति-रिवाजों और अवैधताओं, वासनाओं और दुनियापरस्ती की तरफ़ लोगों को बुलाते हैं और उनकी दावत पर जो लोग उधर चल पड़ते हैं, तो उनपर उन तमाम लोगों के बहकाने का जुर्म आइद होता है जो उनकी बात मानकर उन ग़लत राहों पर चलें।

इसके विपरीत जो लोग अल्लाह की बन्दगी, रसूलों की पैरवी और सच्चे दीन को अपनाने की तरफ़ लोगों को बुलाते हैं, उनको उनके बराबर अज्र मिलना चाहिए, जो उनकी दावत से प्रभावित हुए। जिन्होंने उस दावत की तरफ़ क़दम बढ़ाया, यानी अगर किसी आदमी की दावते-दीन की कोशिश के नतीजे में कुछ ग़ैर-मुस्लिम भाई ईमान ले आए तो दावत देनेवाले के हिस्से में अपनी नेकी के अज्र के साथ उन लोगों के ईमान और अच्छे कर्मों का अज्र भी आएगा।

इस हदीस की रौशनी में आप लोगों का फ़र्ज़ है कि अपनी पूरी कोशिश इस बात पर लगा दें कि ग़ैर-मुस्लिम भाई इस्लाम के क़रीब

आ सकें और उसकी शिक्षाओं को समझ सकें।

यह तो आप भी देख रहे हैं कि आजकल इनसान हद से ज़्यादा ग़ाफ़िल हो गया है। अब तो खुल्लम-खुल्ला अल्लाह से बग़ावत कर रहा है। रिश्वत, सूद, बेहयाई, कुफ्र, गुमराही दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। हमारे अपने देश में भी यही स्थिति है, ऐसे समय में अगर हमने ग़फ़लत बरती और जानते-बूझते लोगों को तबाही की तरफ़ जाने से न रोका तो इसका परिणाम बहुत भयानक होगा। इतिहास से हमें सबक़ लेना चाहिए। कितनी बस्तियाँ हैं, जो उलट दी गईं, कितने ही लोग हैं, जो अपने करतूतों के कारण दुनिया से मिटा दिए गए और कितनी क़ौमें हैं, जो ख़ुदा की नाफ़रमानी के कारण इबरत बन चुकी हैं। इसकी तरफ़ इशारा करते हुए क़ुरआन कहता है—

> "कितनी ही बस्तियाँ हैं, जिन्हें हमने विनष्ट कर दिया, इस दशा में कि वे ज़ालिम थीं, तो वे अपनी छतों के बल गिरी पड़ी हैं। और कितने ही कुएँ बेकार पड़े हैं और कितने ही मज़बूत महल भी वीरान हो चुके हैं। तो क्या वे ज़मीन पर चले-फिरे नहीं कि उनके दिल ऐसे होते कि समझते और ऐसे कान होते कि सुनते, बात यह है कि आँखें अंधी नहीं होतीं बल्कि वे दिल अंधे हो जाते हैं जो सीनों में होते हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22, अल-हज, आयत-45,46)

गेहूँ के साथ घुन पिस जाने की बात भी हम जानते हैं। इसलिए हम इस घमण्ड में न रहें कि हममें से कुछ लोग नमाज़ पढ़ लेते हैं या कुछ लोग और दूसरे मज़हबी अरकान अदा कर लेते हैं, केवल इतने ही को काफ़ी समझ बैठना तथा और लोगों को गुमराही के रास्ते पर जाने से न रोकना आख़िरत (फ़ैसले के दिन) की जवाबदही से हमें बरी नहीं कर सकता।

